International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 10, Issue 04, April 2023
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

वेदान्त एवं जम्भवाणी में दार्शनिक चिंतन

–स्वामी सच्चिदानन्द आचार्य
शोधछात्र
संस्कृत विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक

दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'दृश' धातु से करण अर्थ में ल्युट प्रत्यय लगाकर हुई है।[1] इस उत्पत्ति के अनुसार दर्शन का अर्थ हुआ 'देखना' या 'जिसके द्वारा देखा जाये'। शिवराम वामन आप्टे के अनुसार दर्शन का अर्थ होता है– 'वह ज्ञान जो देखने से हो, साक्षात्कार तत्व सम्बन्धी या वह ज्ञान जो ब्रह्म, जीव, जगत, मोक्ष का ज्ञान कराये।'[2] रामचन्द्र वर्मा ने अपने शब्दकोष में दर्शनशास्त्र का अर्थ लिखा है– 'वह विद्या या शास्त्र जिसमें प्रकृति, आत्मा, परमात्मा और जीवन के अन्तिम लक्ष्य आदि का विवेचन होता है, तत्वज्ञान।'[3]

अनेक भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने दर्शन को परिभाषित करने का प्रयास किया है– डॉ. नरेन्द्र सिंह शास्त्री क अनुसार– 'मस्तिष्क में जिस ज्ञान, भक्ति, कर्म त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ है, उसने मानव के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर पवित्र, नित्य, शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतित पावनी धारा को दर्शन कहते हैं, जिसे बौद्ध साहित्य में 'दिट्ठी' शब्द से पुकारा है।'[4]

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार– 'A system of thought is called a darshana.'[5] अर्थात् चिंतन पद्धति का नाम ही दर्शन ह।

डॉ. एन.के. देवराज के अनुसार– 'दर्शन मानवीय आत्मा का वर्णनात्मक अध्ययन तथा मानव संस्कृति का समीक्षात्मक वर्णन है। दर्शन वह प्रयत्न है, जिसके द्वारा मानव संस्कृति आम चेतना को

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्राप्त करती है। बौद्धिक चिंतन के सामान्य नियमों के अनुसार दर्शन का उदय तब होता है जब बुद्धि के सामने असंगतियां उठ खड़ी होती है। एक ही क्षेत्र में उठने वाले विरोध तथा असंगतियां प्रदर्शन के विषय हो सकते हैं और दर्शन उन मान्यताओं, प्रत्यया तथा पद्धतियों पर विचार कर सकता है, जिन्हें लगभग विज्ञान स्वीकार करता है।'[6]

पाश्चात्य दर्शन भारतीय दर्शन से कुछ भिन्न दृष्टिकोण रखता है। वहां अलग विषयों को अलग–अलग दर्शन माना जाता है, जबकि भारत में इसे समग्रता में माना गया है। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वानों ने दर्शन को अत्यधिक महत्व दिया हैं और इसे विज्ञान का आधार मानते हैं। स्टेश ने तो यहां तक कहा है कि दर्शन सभी विज्ञानों का उद्‌गाता है।[7] जे.ए. मैकविलियम ने इसे विज्ञानों का विज्ञान कहा है, जिसका उद्‌देश्य मानव अनुभवों के सत्यों की खोज करता है।[8]

दर्शन रहस्यात्मक सत्यता के दर्शनार्थ अनुसंधान और प्रतिसंधान करता रहा है और रहेगा, यही इसकी जीवंतता और सार्थकता की कसौटी है। अनेक महानुभावों, विवेकी विद्वानों ने जगत के रहस्यों के अनेक तर्कसंगत समाधान दिये हैं। इन समाधानों की पृष्ठभूमि, संस्कृति, वातावरण, विचारशैली की विभिन्नता के कारण स्वरूपभेद लिए हुए है, परन्तु जहां तक दर्शन के मूलाधारों का प्रश्न है, वे समस्या की एकरूपता में लगभग सब जगह एक जैसे ही रहे हैं।

भारत की दीर्घ दर्शन परम्परा में वेदान्त व जम्भवाणी का उल्लेखनीय स्थान है। दोनों ही ग्रन्थों में दार्शनिक तत्वों का सांगोपाग विवेचन हुआ है, जिनका संक्षिप्त विवेचन यहां अपेक्षित है।

ब्रह्म–

अद्वैत वेदान्त सम्मत् सत् वह है जो त्रिकालाबधित हो। इस प्रकार कूटस्थ नित्य अपरिणामी अनिर्वचनीय ब्रह्म ही सत् है। उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन मिलता है। अपर ब्रह्म को सगुण, सविशेष सविकल्प कहा गया है। इसी को ईश्वर कहते हैं। परब्रह्म निर्गुण, निर्विकल्प, अनिर्वचनीय है। सगुण ब्रह्म के दो लक्षण हैं– 'तटस्थ' लक्षण एवं स्वरूप लक्षण ब्रह्म इस जगत की उत्पत्ति स्थिति एवं लय का कारण है।[9] इसी विषय में तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है–

'यतो व इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिस विशन्ति तद् ब्रह्म।'[10]

विशिष्टाद्वैत वेदान्त के यमुनाचार्य जी ईश्वर को परमात्मा के रूप में अस्तित्वमान स्वीकार करते हैं। उनका ईश्वर 'अह' प्रत्यय युक्त है। वह परम ज्ञाता एवं विभु हैं। रामानुजाचार्य ने 'सर्व खल्विद ब्रह्म' का अर्थ किया है, 'यह समस्त ब्रह्माण्ड ब्रह्म ही है'। संसार ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म पर ही आश्रित है एवं ब्रह्म में ही विलीन हो जायेगा। रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर एक होते हुए भी भक्तों की मुक्ति व सहायता हेतु पांच रूपों में अभिव्यक्त होता है– 'पर, व्युह, विभव, अन्तर्यामि, अर्चावतार'।

जम्भवाणी में ब्रह्म को 'विष्णु' कहा गया है। वेदान्त की भांति जम्भवाणी में भी ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकार्यता है। गुरु जम्भेश्वर जी ब्रह्म के सगुण स्वरूप को मानते हुए अवतारवाद को महत्व देते हैं–

'नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थोयूं।'[11]

वहीं दूसरी ओर ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए वे उसे सर्वव्याप्त मानते हैं।

'पवणा रूप फिरै परमेसर'

सप्त पताले, तिहूं तिलोके चवदा भवने गगन गहीरे।

बाहर भीतर सर्व निरन्तर जहां चिन्हों तहां सोई।।[12]

इस प्रकार हमें वेदान्त व जम्भावाणी में ब्रह्म के सगुण–निर्गुण दोनों स्वरूपों का समन्वय मिलता है।

जीवात्मा–

शंकर वेदान्त में ईश्वर एवं जीव के सम्बन्ध में प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद एवं आभासवाद की अवधारणा है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ब्रह्म का माया में प्रतिबिम्ब ईश्वर है एवं अविद्या में प्रतिबिम्ब जीव है। कुछ अद्वैत वेदान्ती ईश्वर को बिम्ब एवं जीवों को ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानते हैं। माया तथा अविद्या के कारण ब्रह्म की प्रतीति इश्वर एवं जीव के रूप में होती है–

'सा ईशो यद्वशे माया स जीवो यस्य यार्दित।'

शंकराचार्य के अनुसार– जीव का अंशत्व वास्तविक नहीं है[13], प्रतीति माना है क्योंकि ईश्वर वस्तुतः निरवयव ब्रह्म है।[14]

यमुनाचार्य के अनुसार– जीवात्मा सर्वव्यापी नहीं, अपितु अणुरूप है। यदि आत्मा सर्वव्यापी होती तो हमें सभी पदार्थों का ज्ञान एक साथ ही होता, किन्तु ऐसा नहीं होता है। ज्ञान आत्मा का विलक्षण गुण है, स्वरूप नहीं। ज्ञान की उत्पत्ति विषय के सम्पर्क से होती है, आत्मा में स्वतः ही नहीं। अतः आत्मा ज्ञान से भिन्न ज्ञातारूप है। अहंकार आत्मा का स्वरूप ही है।

रामानुजाचार्य ने जीवात्मा को 'चित्' पद से अभिहित किया है। उनके अनुसार– 'चित्' तत्व अर्थात् जीवात्मा सर्वोपरी ब्रह्म का ही एक अंश अथवा विशेषण है–

'अणुत्वे सति चेतनत्वम्, स्वतः शेषत्वे सति चेतन त्वम्।'[15]

समस्त जड़, तन व देह आदि कार्य प्रकृति के परिणाम हैं। यद्यपि भ्रमवश आत्मा के अपने समझ जाते हैं किन्तु वास्तव में ये भेद आत्मा में नहीं रहते। आत्मा अपने तात्विक स्वरूप के कारण अपरिवर्तित रहते हुए भी प्रकृति संग से अहंकारादि से दूषित प्राकृत धर्मों को अपना मानती है, यही जीव का वध भी कहलाती है। वास्तव में आत्मा ज्ञानान्दमय तथा परमात्मा का शेषांश है–

नाय देवो न मर्त्यो वा न तिर्यक स्थावरोऽपि वा।
ज्ञानानन्द भयस्त्वात्मा शेषो हि परमातान।।[16]

जम्भवाणी में भी शरीर को मरणधर्मा व नाशवान माना गया है तथा आत्मा को गीता की भांति अजर–अमर माना गया है। इस विषय में जम्भवाणी के कुछ कथन दृष्टव्य हैं–

'झूठी काया उपजत विणसत' –सबदवाणी, पृ. 79

'आवत काया ले आयो थो जावत सूको जागो' – सबदवाणी, पृ. 108

'आवत जावत दीसै नाहीं' –सबदवाणी, पृ. 112

'देह न जीती जाणी' –सबदवाणी, पृ. 119

जगत–

जगत की सत् रूप सत्ता है। यमुनाचार्य का कथन है कि जगत का मिथ्यात्व मानने पर ब्रह्म का अनुभव भी मिथ्या हो जाएगा। ब्रह्म जगत का उपादान कारण है। जगत के समस्त पदार्थ उस परम सत्ता ईश्वर से ही अपनी शक्तियां प्राप्त करते हैं। जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से उसी तरह है जैसे अग्नि से स्फुर्लिंग अथवा सूर्य की रश्मियां।

अद्वैतवाद् के अनुसार– शुद्ध, सर्वगत एवं निर्गुण 'ज्ञान' है। समस्त जीव एवं जगत मिथ्या है।

रामानुजाचार्य के अनुसार– जगत 'अचित्' है। यह भी ईश्वर का अंश है। 'अचित्' पद से आचार्य सम्पूर्ण संसार का तात्पर्य लेते हैं जिसमें शरीर इन्द्रियां एवं दृश्य पदार्थ आते हैं।

अचिच्छब्दवाच्य दृश्य जड़ जगत्त्रिविध भोग्यभोगोपकरणभोगायतन भेदात्।।[17]

प्रकृति का अस्तित्व श्रुति प्रामाण्य के आधार पर माना जाता है। इसके तीनों गुण (सत्त्व, रजस, तमस) सृष्टि रचना के समय इसमें प्रकट होते हैं। मिश्रसत्त्व को प्रकृति, माया या लीला विभूति भी कहते हैं। वह जड़ योग्य और विकारास्पद् है। यह जगत का उपादान कारण है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने भी अपनी वाणी में जगत की उत्पत्ति व स्थिति को लेकर अपनी वाणी में पर्याप्त विचार किया है। कलश मंत्र में कहते हैं–

आकाश वायु तेज जल धरणी

तामा सकल सृष्टि की करणी।[18]

इस पर और अधिक प्रकाश डालते हुए जम्भवाणी में कहा गया है–

'आद सबद अनाहद वाणी, चवदै भवण रहया छल पाणी।

जिह पाणी से इंड उपन्ना, उपन्ना ब्रह्म इन्द्र मुरारी।'[19]

माया–

शंकर मतानुसार– ब्रह्म एवं आत्मा एक है, जगत प्रपञ्च 'माया की प्रतीति है। जिस प्रकार रज्जु भ्रम में सर्प के रूप में रज्जु की प्रतीति होती है तथा रज्जु ज्ञान होने पर सर्प भयादि का बोध हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी अविद्या अथवा माया के कारण जीव जगत प्रपञ्च रूप में आभासित

होता है। माया को ब्रह्म की अभिन्न शक्ति माना गया है। इसे सदसदनिर्वचनीय या भावाभाव विलक्षण कही गयी है। यह सद् एवं असत् दोनों ही नहीं हो सकती। यह अध्यास है, भ्रान्ति अथवा भ्रम है। इसका आश्रय एवं विषय दोनों ही ब्रह्म ही है।

वैष्णवाचार्य शंकराचार्य के मायावाद विषयक धारणा का खण्डन करते हैं। उनके अनुसार माया अज्ञान रूप असत न होकर सत् ब्रह्म की शक्ति है। 'माया' अविद्या से भिन्न और नानारूपात्मक जगत सृष्टि म हेतु है। यह ईश्वर की कार्य–कारणात्मिका शक्ति है, जिसे श्रीकृष्ण गीता में 'योगमाया' शब्द से अभिहित करते हैं।[20] रामानुज प्रकृति को भी माया की एक स्थिति मानते हैं। प्रकृति की विचित्र सर्गशीलता के कारण उसे माया कही गयी है।

गीता में भी माया को लेकर कहा गया है कि ब्रह्म अपनी योगमाया से आच्छादित होने के कारण सबके लिए प्रत्यक्ष नहीं होता।[21] गुरु जम्भेश्वर जी ने भी माया को भ्रम का बहुत शक्तिशाली बंधन माना है–

'माया जाल भरम का सांकल, बहु जन रहियो छायो।'[22]

मोक्ष–

'मोक्ष' भारतीय दर्शन का सर्वोच्च तत्त्व है। मानव जीवन प्राप्ति का चरम लक्ष्य मोक्ष को ही माना गया है। सम्पूर्ण भारतीय में इसकी चर्चा बहुत विस्तार से मिलती है। वेदान्त व जम्भवाणी के दर्शन का मूल उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति है। इसलिए इन दोनों ही ग्रन्थों में मोक्ष की विवेचना बहुत विस्तार से की गई है।

शंकर वेदान्त के अनुसार आत्मा एवं ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति 'मोक्ष' है। शंकराचार्य ब्रह्म एवं मोक्ष को एक ही मानते हैं क्योंकि जो ब्रह्म को जानता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है–

'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'।[23]

मोक्ष नित्य, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा या ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति है। शंकराचार्य मोक्ष के स्वरूप का व्याख्यान इस प्रकार करते हैं– 'वह पारमार्थिक सत्य है, कूटस्थनित्य, आकाश की भांति सर्वव्यापी है, विकार रहित है, नित्य तृप्त एवं निरवयव है, स्वयं ज्योति स्वभाव है, यह धर्म एवं अधर्म

नामक शुभाशुभ कर्मों से तथा सुख–दुःख रूपी उनके कार्यों से अस्पृष्ट ह, यह कालत्रयातीत है, यह अशीरत्व 'मोक्ष' कहलाता है।

'इद तु पारमार्थिक कूटस्टानित्य, व्योमवत् सर्वव्यापि सर्वविक्रियारहित,
नित्यतृप्त, निरवयव, स्वयंज्योति स्वभावतम् यंत्र धर्माधम सह कार्येण,
कालत्रय च, नोपावर्तेते, तदेतत् अशीरत्व मोक्षाख्याम्।'[24]

रामानुजाचार्य परम तत्व की प्राप्ति हेतु कर्म बन्धन से मुक्त होना आवश्यक मानते हैं। वे मोक्ष को आत्मा का तिरोभाव नहीं मानते, बल्कि बाधक मर्यादाओं को नष्ट करके स्वरूप प्राप्ति को ही मोक्ष मानते हैं– **'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति'**।

रामानुजाचार्य जीव के बध का कारण अज्ञान मात्र को नहीं बल्कि ज्ञान कर्म समुच्चय को स्वीकार करते हैं।

जम्भवाणी में भी मोक्ष को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। गुरु जम्भेश्वर जी मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते हुए इसे 'रत्नकाया' कहते हैं।

'जंपो रे जिण जंपै लाभै रतन काया एह कहाणी'।[25]

जम्भवाणी के अनुसार– मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् आवागमन से छुटकारा मिल जाता है–

'रत्नकाया वैकुण्ठो वासो तेरा जरा मरण भय भाजूं'।[26]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदान्त एवं जम्भवाणी का दार्शनिक चिंतन बहुत गहन व व्यापक है। दोनों ही ग्रंथों में भारतीय दर्शन के सभी तत्व सम्यक् रूप से विवेचित हुए हैं।

संदर्भः

1. पाणिनी अष्टाध्यायी, 4/4/56
2. शिवराम वामन आप्टेः हिन्दी संस्कृत कोष, पृ. 790
3. आचार्य रामचन्द्र वर्माः प्रामाणिक हिन्दी कोष, पृ. 382
4. डॉ. नरेन्द्र सिंह शास्त्री, भारतीय दर्शन का इतिहास; पृ. 1
5. S. Radhakrishnan: The Barma Sutra, p. 20
6. डॉ. एन.के. देवराजः संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 1
7. E. Stace, What is Philosophy (Journal Philosophy and Sciences) Vol. XXXVI
8. J.A. Mac Williams, Philosophy for the Millions, p. 18
9. ब्रह्मसूत्र, 1/1/2, जन्माद्यस्य यत
10. तैत्तिरीय उपनिषद्, 3/1
11. (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, सबदवाणी, संस्करण 2012, पृ. 31
12. वही, पृ. 78
13. ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन—गीता — 15/7
14. शंकरभाष्य, 2/3/43, 47
15. योगीन्द्र मत दीपिका, अष्टमोवतार।
16. गीता, 4/3
17. सर्वदर्शन संग्रह; पृ. 191
18. संपा. कृष्णानन्द आचार्य, सबदवाणी, संस्करण, 2012, प. 175
19. वही, पृ. 175
20. गीता, 2/24
21. श्री श्रीमद्भगवद् गीता, 7/24
22. संपा. कृष्णानन्द आचार्य, सबदवाणी, पृ. 96
23. मुण्डकोपनिषद्, 3/2/14
24. शंकरभाष्य, 1/1/4
25. संपा. कृष्णानन्द आचार्य; वही, पृ. 128
26. संपा. कृष्णानन्द आचार्य, वही, पृ. 174